

# गरजे शहादत

उमदतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे हुसैन नक्वी साहब ताब सराह

जब हिजरी सन् बदलता है, जब माहे जिलहिज्जह की आखरी तारीख में खंजरे गम बनकर नया चाँद मोहरम की पहली रात में आसमान पर चमकता है, जब हर सच्चे शीआ के घर में मातम की सफ बिछती है, ग़म का लिबास जिस्म पर होता है, हर मर्द औरत पूरी तरह से ग़म की निशानी बन कर अहलेबैते रसूल (स0) की मुहब्बत का मुज़ाहेरा करता है। जन्नत के फिदायी असहाबे हुसैन की तरह मज़लूम पर जान फिदा करने की तमन्ना में बेचैन होने वाले कहीं अलमदारे लश्करे हुसैन की यादगार में अलम नसब करते हैं कहीं जियातरते क़ब्रे हुसैन के मुश्ताक़, बाँस, कागज़, लकड़ी या चाँदी सोने से शबीहे रौज़ा शहीदे कर्बला बना के असल से दूर रह कर भी शबीह को देख कर सवाबे ज़ियारत हासिल करते हैं।

ज़िक्रे हुसैन को हर उस अन्दाज़ में दुनिया के सामने पेश करने की कोशिश करते हैं जो दिलनशीन और नज़रों में समाने वाला हो। दुनिया के हर उस इंसान के लिए जज़्बात को भड़काने वाला हो, जिसके दिल के किसी गोशे में मज़लूम से हमदर्दी की लहरें छुपी हों।

इनही फिक्रों का इज़हार कहीं रौज़ाख़्वानी कहीं किताब ख़्वानी, कहीं वाक़ेआ ख़्वानी और कहीं नस्र ख़्वानी, मरसिया और ग़म की सूरत में ज़ाहिर होता है और अब आख़िर में नसीहत के नाम से बुलन्दी की आख़री मन्ज़िल तक पहुँचता है। मज़क़ूर बाला बहुत से अन्दाज़ वह हैं जो अब

छूटे हुए हैं और शायद सैकड़ों आदमियों को मालूम भी न होगा कि मज्लिसे ग़म में उनके पेश करने का तरीका क्या था अपनी मालूमात की हद तक मैं यह कहने की ज़ुराअत कर सकता हूँ कि नसीहत का अन्दाज़ आम होने से पहले हर ज़ाकरी का अन्दाज़ सिर्फ़ फ़ज़ाएल व मसाएबे मासूमीन (अ0) तक मुनहसिर था जिसमें मुनाज़रा की नमकीनी सुनने का शौक़ बढ़ाने के लिए लाज़मी समझी जाती थी।

मगर तकरीबन एक सदी के अन्दर-अन्दर जब से नसीहत धीरे-धीरे ज़ाकरी के मुख़्तलिफ़ तरज़े नज़र करने लगा, उस वक़्त से मुख़्तलिफ़ मौजू हाज़रीने मजलिस की समाअत तक पहुँचने लगे। (मगर कमी के साथ) ज़ियादती ऐसे ही मज़ामीन, लफ़्ज़ी रिआयात, ख़िताबात, शाएराना नुकात की थी और है। जो सलवात के लरज़ते नारों से वाइज़ के कलाम को आम पसन्द होने की सनद दे दें। वाह-वाह के लालच में सुनने वालों को यह भी समझा दिया जाता है कि सिर्फ़ मुहब्बते आले मोहम्मद (स0) नजात के लिए काफी है। यह भी कह दिया जाता है कि ग़म का एक आँसू तमाम जहन्नम की आग को बुझा देगा।

एक मातम की मज्लिस में बैठ जाना जन्नत का मुस्तहक़ बना देगा मगर यह नहीं बताया जाता कि "बिशरतिहा व शुरुतिहा" यह चीज़ें सिर्फ़ उसी वक़्त जन्नत का परवाना बनती हैं जब इनके साथ ईमान हो, वहदत हो, रिसालत, इमामत, मआद, खुदा की अदालत और तमाम

उसूले दीन के सच्चे दिल से इकरार के साथ। फुरुए दीन, नमाज़, रोज़ा, हज व ज़कात, खुम्स और हराम व हलाल के अहकाम पर भी अमल हो। नमाज़ के वास्ते सुन्नी व शीआ का इत्तेफाक है कि अगर यह इबादत कबूल न होगी तो हर अच्छा काम रद्द हो जायेगा। रोज़े के वास्ते यह अहमियत है कि मोमिन हो, बड़े से बड़ा अज़ादारे हुसैन (अ0) हो, लेकिन माहे रमज़ान में तीस दिन बिना किसी शरअी उज़र शरअी हाकिम की तम्बीह के बाद भी रोज़ा न रखे तो अगर हुकूमते शरअी पर सरकार हो तो उस मोमिन को क़त्ल कर दो। हज जिस पर वाजिब हो और वह इमकान के बाद भी हज न करे तो वह आखिर वक़्त यहूदी काफिर होकर मरेगा। ज़कात मोमिन का हक़ है जो ज़कात अदा न करे उसको खुदा हरगिज़ माफ न करेगा, जब तक वह मोमिन माफ न करें जिनका हक़ उसने अदा नहीं किया।

खुम्स सादात और इमाम (अ0) का हक़ है और यकीनन वाजिब होने के बाद अपने ही माल में हेर-फेर करने वाले भी ग़ासिबे हक्के सादात और ग़ासिबे हक्के इमाम हैं। जिसके माफ करने से अइम्मा ने इनकार फरमा दिया है। जो चीज़ें शरअ ने हराम की हैं उनमें कुछ ऐसी भी हैं जिनके लिए कुर्आन ने खुली दलील दी है कि अगर कोई उनका इरतेकाब करे तो चाहे वह मोमिन हो, चाहे वह मुस्लिम है, अहलेबैत का दोस्त हो या अज़ादारे हुसैन (अ0) मगर उसका बदला जहन्नम के सिवा कुछ और नहीं हो सकता। जैसे क़त्ले मोमिन, पाकदामन के साथ ज़िना करने की सज़ा यह है कि संगसार करके मार डाला जाए।

“और इन्हीं सब चीज़ों की तालीम गर्जे

शहादते हुसैन (अ0) थी।”

अगर हमारे सैय्यद व सरदार (अ0) की शहादत सिर्फ इस गर्ज से होती कि रोने वाला कोई भी हो सीधा जन्नत में जाए। मजलिसे हुसैन में बैठने वाला किसी मज़हब का पाबन्द हो मगर वह नजात का मुस्तहक़ है। अहलेबैत (अ0) का दोस्त चाहे जैसा भी बदकार और इबादात को छोड़ने वाला हो मगर वह नजात पाने वाला है, तो यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि इमामे हुसैन (अ0) ने अपने नाना का दीन बचाने के लिए कर्बला की अक्ल को हैरान करने वाली फिदाकारी दुनिया के सामने पेश की। नाना ने वहदत, रिसालत, मआद, सिफाते इलाही, नमाज़, रोज़ा, हज वगैरा हर चीज़ की तालीम दी और बगैर इस इल्म व अमल के जन्नत भी मिल जाना मुश्किल बता दिया मगर इमाम हुसैन (अ0) ने मआज़ल्लाह नसरानियों के अक़ीदे की तरह उम्मत के गुनाहों का फिदया बनकर उम्मत को आम इजाज़त दे दी कि कोई अमले ख़ैर न करना, किसी बुराई से न बचना, बस सिर्फ मेरी अज़ादारी करना और जन्नत तुम्हारी है।

नहीं खुदा की क़सम हरगिज़ इमामे हुसैन (अ0) की यह तालीम नहीं थी। उनकी शहादत की गर्ज सिर्फ हिफाज़ते इस्लाम थी, तालीमाते रसूल (स0) को बाकी रखना था, लोगों को गुमराही से बचाकर उसूल व फुरु के सही रास्तों पर लगाना गर्जे हकीकी थी।

एक ज़माने में इस हिन्दुस्तान में जो कभी जन्नत निशान कहा जाता था, और अब जहन्नम की तस्वीर है। जहाँ इक्तेसादी तकलीफों, लूट-मार, आम लोगों की बदअख़लाक़ियों, क़ानून की ख़िलाफवर्जी, हुक्काम की नाइंसाफ़ियों, हुकूमत



की गुफ़लतों और बदइन्तिज़ामियों की कड़वाहट, महंगायी की शिद्दत, डकैती, क़त्ल व ग़ारतगरी, इन्सानि ख़ून की बेक़द्री और फिर फिरका परस्त जमातों की तबलीगी कोशिशों ने हर इंसान की ज़िन्दगी मौत से बदतर बना दी है। अगर हम अपने मज़हब को बचा सकते हैं तो सिर्फ़ अज़ादारी की बदौलत मगर न इस सूरत से कि नौहे को नौहे की हद से निकाल कर मदह की नज़्म बना दें, और उस पर मातम करें मिसरा यह हो कि अली (अ0) ने ख़ैबर फतह कर लिया और हम उस पर मातम कर रहे हैं। न इस सूरत से हम सिर्फ़ चाँद के दो टुकड़े होने और सूरज के वापस लौट आने में बारीकियाँ देखें न इस सूरत से कि सोज़ख़ानी में बड़े-बड़े गवय्यों को मात कर दें। न इस सूरत से कि मिम्बर को तबरी बाज़ी से भरकर खुद अपने ही अफ़राद को मज्लिस से उठ जाने पर मजबूर कर दें बल्कि अगर इस दौर में इस्लाम को बचा सकते हैं तो सिर्फ़ यह बताकर कि हुसैन (अ0) वहदत के कितने ज़बरदस्त मोतकिद थे, शहादत की मन्ज़िलों की वह अज़ीमुशशान सख़्तियाँ जिनको दुनिया का कोई इंसान बर्दाश्त न कर सका सिर्फ़ इस जज़्बे में तय कर गये कि मेरे ख़ालिफ़ का यही हुक्म है, हर वह मुसीबत जो इंसान के तहम्मूल से बाहर थी बड़ी हंसी खुशी से सिर्फ़ इसलिए उठा ली कि मेरा अल्लाह इसमें राज़ी है रसूल की सदाक़त का सुबूत इमामे हुसैन (अ0) ने हर उस इबादत को कर्बला में अदा करके दिया जिनकी तालीम ख़ातमुन्नबिय्यीन (स0) ने दी थी। और जिसको इस मज़लूम और दूसरे मासूमीन (अ0) के अलावा कोई कर्बला के हालात में अदा न कर सका, यानी वाजिबात तो वाजिबात मुसतहब्बात भी तर्क न

किये जिनका तज़क़िरा इशारों किनायों में कर देने से कुछ हज़रात ग़ाली शीओं की नज़रों में काबिले लान-तान हो गये। मज़हबी मामलों में यक़जहती, इत्तेहाद, खुलूस, नीयत, सब्र, जन्नत व नार, हिसाब व किताब, सवाब व सज़ा, हर चीज़ में यकीन व ईमान की वह मन्ज़िल इमामे हुसैन (अ0) व अस्हाबे हुसैन (अ0) ने पेश की जिससे ज़्यादा मुस्तहक़म ईमान किसी आम इंसान में होना नामुमकिन है।

आज हिन्दुस्तान में यकीनन हमारी जान व माल इतने ख़तरे में नहीं है जितना ईमान ख़तरे में है। इस वजह से कि हुकूमत का मसलक लादीनी है तो रिआया में भी ला मज़हबियत का असर आना ज़रूरी है और इस वजह से कि हुकूमत का मसलक ला दीनी सही मगर कभी-कभी अरकाने हुकूमत किसी न किसी मज़हब के जज़्बात से यकीनन मुतास्सिर हैं। जिनका इज़हार कभी न कभी और किसी न किसी अन्दाज़ में हो जाना नागुज़ीर है और इसलिए कि एक तरफ़ बहाई मिशन दूसरी तरफ़ शुद्धी के फ़िदायी मज़हब बदलवा देने पर तैयार हैं। और उसमें ज़रा सा भी झूठ नहीं कि गुड़गाँव के इलाक़े में बंगाल के दूर-दराज़ देहात में सूबे मुम्बई वगैरा के गाँवों में बहुत से मुसलमान अपना दीन बदल चुके हैं। और इसलिए कि नाम के मुसलमान और सिर्फ़ ख़ानदानी शीआ यूँ औरतों की तालीम के फ़िदाई बन गये हैं कि उनको न ज़िनाकारी आम हो जाने की शर्म है, न बेपर्दगी की ग़ैरत है। न इग़्वा के आम वाक़ेआत देखकर आँख खुलती है, न औरतों के दूसरे मज़हबों के साथ सिविल मैरेज कर लेने से कान पर जूँ रेंगती है, बिलकुल सच है..... "अलहया मअल ईमान" (अगर ईमान हो तो शर्म

व हया भी होती है) अगर ईमान नहीं तो शर्म व हया का खुदा हाफिज़, इस काएदे के मुताबिक यह कहना नागुज़ीर है कि जो बेहयाई बर्दाश्त करने पर खुशी-खुशी तैयार हैं उनका ईमान यकीनन कमज़ोर है। आप याद रखें कि बच्चों की शुरुआती और घरेलू तरबियत व तालीम बहुत ज़ाएद हमारी औरतों की एहसानमन्द है। और इस वजह से यह कौल मशहूर है कि ईमानदारी का ज़्यादा बाकी रहना औरतों ही के दम से है, इसलिए अगर औरतें ही दुनियावी तालीम हासिल करके दूसरे मज़ाहिब से सिविल मैरेज करके ईमान व इस्लाम से बाहर हो जाएँगी। तो बड़ी हद तक ईमान और उसके साथ अज़ादारी भी ख़त्म हो जाएगी, इसलिए इस ज़माने में अज़ादारी-ए-इमामे हुसैन (अ0) में वह अन्दाज़ इस्तिथार किये जाना लाज़िम हैं जिनसे ग़ैर मज़ाहिब मुतास्सिर हों या न हों लेकिन कम से कम हमारे मज़हब में तालीमाते हुसैनी पर अमल करने और उनके नक़्शे क़दम पर चलने का शौक पैदा हो। हमारी औरतों में अहलेबैते हुसैन (अ0) की तरह ईमान, इबादत और इताअते ख़ालिक का शौक पैदा हो।

हमारी औरतों और मर्दों को समझना चाहिए कि अगर हम पर फाका गुज़र जाए, अगर हम फ़क़्र की हालत में हों, अगर हम को कहीं मुलाज़मत न मिले, अगर दुनिया हमको ज़लील निगाहों से देखे जो कुछ भी हम पर मुसीबत आए तो हर मुसीबत के बाद भी हमारी तकलीफें असराए अहलेबैत (अ0) की तकलीफों से ज़ाएद कभी बराबर नहीं हो सकतीं। तो क्या इन मुसीबतों पर अल्लाह की पनाह बनी हाशिम की औरतों ने

अपना दीन छोड़ दिया? क्या इबादाते इलाही से ग़ाफिल हो गयीं, क्या अपनी बेपर्दगी को सर झुका कर मन्ज़ूर कर लिया

जनाबे सकीना जिनका सिन तीन या सात साल का था। जो उन औरतों की हद में न थीं। मगर दरबारे यज़ीद में रो रहीं थीं। यज़ीद के सवाल पर आपने जवाब दिया कि वह औरत क्यों न रोए जिसके मुँह को ढाँकने को ज़रा सा कपड़ा भी मयस्सर न हो कि ना महरमों से मुँह छिपा सकें। सबक लें शाहज़ादी के इन अलफाज़ से वह जो कहते हैं कि शरीअत में मुँह का पर्दा लाज़िम ही नहीं है। अगर ऐसा होता तो हमारी शहज़ादी मुँह खुला होने की शिकायत न करतीं और यज़ीद भी जवाब दे सकता था कि मुँह खुला है तो ग़म क्यों है शरीअत में तो मुँह का पर्दा लाज़िम ही नहीं है।

तो क्या जनाबे सकीना के उन बहते हुए आँसुओं के बाद वह औरतें अहलेबैते (अ0) रसूल (स0) की सच्ची चाहने वाली कही जा सकती हैं जो बेपर्दा घूमें, सिनेमा जाएँ, होटलों में ग़ैरों के साथ गुलछरें उड़ाएँ, और आख़िर इग़्वा और सिविल मैरेज के अज़ाब में फंसें, और क्या वह मर्द सच्चे हुसैन के शीआ हो सकते हैं जो उन तमाम बेहयाइयों को खुशी के साथ बर्दाश्त करें, न खुदा को पहचानें, न रसूल (स0) को मानें, न नमाज़ पढ़ें न रोज़ा रखें, न अज़ाब व सवाब की फ़िक्र करें। और क्या वह दौलतमन्द सच्चे मोमिन कहे जा सकते हैं जो दीन की बुनियादों के हर हिस्से से आज़ाद हों न हज़ करे, न खुम्स दें, न ज़कात अदा करें और फिर अहलेबैत (अ0) के दोस्तदार होने का दावा करें। □ □ □